प्रवचन-१९५, गाथा-१६४, सोमवार, अषाढ़ कृष्ण १, दिनांक २८-०७-१९८०

फिर से लेते हैं, १६४ - गाथा।

यह, व्यवहारनय की सफलता दर्शानेवाला कथन है। क्या कहते हैं? - कि आत्मा ज्ञान और दर्शनस्वरूप है। ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव का पिण्ड है। वह जब ज्ञाता-दृष्टा प्रगटा होता है, तब दर्शन स्व को भी देखता है और पर को भी देखता है और ज्ञान भी स्व को भी जानता है और पर को भी जानता है। कोई ऐसा माने कि दर्शन स्व को देखता है और ज्ञान पर को जानता है - तो ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्मतत्त्व देह, वाणी, मन, राग, विकल्प से भिन्न तत्त्व अन्दर है और वह परिपूर्ण अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य आदि से परिपूर्ण वस्तु है। उसमें यह आत्मा अपने ज्ञान को-अपने को भी जानता है और पर को भी जानता है। पूर्ण केवलज्ञान होवे इसलिए। दर्शन भी अपने को भी देखता है और पर को भी देखता है। दर्शन अपने को ही देखता है और ज्ञान पर को ही जानता है - ऐसा भेद नहीं है। ऐसा भेद मानता है, उसके सामने विरोध है।

समस्त (ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षय होने से... भगवान आत्मा पूर्ण बल सम्पन्न है। उस पूर्ण बल सम्पन्न की जहाँ अन्दर में सावधानी की; पूर्ण बल सम्पन्न, पूर्ण ज्ञान सम्पन्न, पूर्ण दर्शन सम्पन्न अपने परिपूर्ण स्वभाव में ध्यान किया तो कर्म का क्षय हुआ। परन्तु यदि ध्यान किया कि पर मेरे हैं, राग मेरा है, पुण्य मेरा है, तब तो आवरण होता है। अपना स्वरूप ही चैतन्य ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप है। पूर्णानन्द ज्ञान जिसका स्वभाव है, वह अपूर्ण नहीं होता। वह स्वभाव पूर्ण है। तो दर्शन और ज्ञान भी अपना स्वभाव है, तो वह स्वभाव भी पूर्ण है।

यह **(ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षय होने से प्राप्त होनेवाला सकल-विमल केवलज्ञान पुद्गलादि मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन परद्रव्यगुणपर्यायसमूह का प्रकाशक किस प्रकार है—ऐसा यहाँ प्रश्न हो, तो उसका उत्तर यह है कि—'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित है)'...** यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है। अपने को देखता-जानता ही है परन्तु पर को जाने, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! निश्चय से-यथार्थ में-वास्तव में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को चुम्बन नहीं करता, एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को स्पर्श नहीं

करता, परन्तु अपने में रहे हुए जो गुण दर्शन, जो ज्ञान और दर्शन का जहाँ विकास हुआ, वह ज्ञान पर को ही जानता है - ऐसा व्यवहार से कोई कहे तो व्यवहार से कहने में आता है। दर्शन स्व को देखता है - ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। यह कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

यहाँ प्रश्न हो, तो उसका उत्तर यह है कि—'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से व्यवहारनय के बल से ऐसा है (अर्थात् परप्रकाशक है);... आहाहा! व्यवहार अर्थात् पर की अपेक्षा से पर को भी देखता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से पर को नहीं देखता। निश्चय से अपने में अपने को देखता है। आत्मा की जो सत्ता है, अपनी जो सत्ता—अस्तित्व, उसमें यह जो दिखता है, वह चीज़ नहीं दिखती। क्योंकि वह इसे स्पर्श नहीं करती। इसलिए उसे देखता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान-दर्शन है, उसे अपने स्वभाव से अपने का निश्चय से जानता-देखता है। व्यवहार से पर को जानता-देखता है, ऐसा कहने में आता है। व्यवहारनय से ऐसा कहने में आता है। जाने-देखे। पर का कुछ करे, (यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : वकील और डॉक्टर तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जो चीज़ है - यह अँगुली है, अँगुली। इसका अस्तित्व है। वह यह उसके (दूसरे के) अस्तित्व से नास्ति है। लॉजिक से समझना चाहिए न! एक चीज़-वस्तु है, वह स्वयं से अस्ति है और अपने सिवाय अन्य चीज़ से नास्ति है। अनन्त पदार्थों से एक पदार्थ नास्तिरूप है और स्वयं से अस्तिरूप है। आहाहा! यहाँ तो बहुत लेना होवे तो पर को जाने, ऐसा व्यवहार आवे। करना-फरना और पर का कर सकता है या डॉक्टर-बाक्टर दवा कर सकता है, इंजेक्शन दे सकता है; वकील, जज के निकट दलील कर सकता है (-ऐसा नहीं है)। सूक्ष्म बात है, भाई!

एक तत्त्व में, जो दूसरा तत्त्व है, अनन्त तत्त्व हैं। अनन्त तत्त्व, अनन्तरूप कब रहें? - कि एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव होवे, तब वह तत्त्व रहेगा। एक तत्त्व में दूसरा तत्त्व आवे तो दो एक द्रव्य हो जाएगा, तो अनन्त, अनन्तरूप नहीं रहेंगे। यह बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! यह दरकार कहाँ की है। आहाहा!

निश्चय से तो ऐसी चीज़ है.. आहाहा! आत्मा जो अन्दर है, वह आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। वह शरीर को कभी स्पर्श भी नहीं है। वाणी को कभी स्पर्शा ही नहीं है। जो अपनी चीज़ में है, उसे स्पर्शा है? अपनी चीज़ में नहीं है, उसे कभी स्पर्शा भी नहीं है, क्योंकि पर से नास्ति स्वभाव है। अपने से अस्ति स्वभाव है। डॉक्टर! सूक्ष्म बात है, तुम्हारी डॉक्टरी के समक्ष। आहाहा!

दवा का एक रजकण, दवा। एक गोली, एक दवा, उस गोली में अनन्त परमाणु हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। दुनिया से अलग बात है। जो वे परमाणु अनन्त परमाणु का पिण्ड है - गोली अनन्त परमाणु का पिण्ड है। ऐसा जो है तो एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। स्वयं से है और पर से नहीं, तब अपने अस्तित्व की पूर्णता सिद्ध होती है। आहाहा! मनुष्य को निवृत्ति कहाँ है? फुर्सत नहीं। आहाहा!

एक चीज़, अपनी चीज़ में जितने गुण हैं, उसे वह जाने, परन्तु अपने में जिस दूसरी चीज़ का अभाव है, उसे यह चीज़ स्पर्श भी नहीं करती। आहाहा! दुनिया से तो उल्टा है। परन्तु यहाँ, दूसरी बात एक ओर रखो, आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन में अपने को देखे-जाने, वह निश्चय, और अपने ज्ञान-दर्शन से पर, जो इसमें नहीं है और अपने से भिन्न है, उन्हें जानता-देखता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। क्योंकि अपना ज्ञान पर को जानने में वह ज्ञान पर में तन्मय नहीं होता, एकरूप नहीं होता। एकरूप नहीं होता, इसलिए व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! धर्म चीज़ ऐसी है। अनन्त काल चौरासी के अवतार में भटकते हुए अनन्त भव हुए। उसमें मैं कौन हूँ? और यह क्या है? उसमें भेदज्ञान—इसमें भेद है, उसका भेदज्ञान किया नहीं। एक, दूसरे से भिन्न हैं, भिन्न है, परन्तु भिन्न का ज्ञान किया नहीं।

यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि अपने ज्ञान-दर्शन जहाँ खिले, अपने आत्मबल में से कर्म का नाश करके अपनी ज्ञान-दर्शन शक्ति जो स्वभाव है, वह व्यक्त अर्थात् प्रगट हो तो वह अपने को जाने ही, परन्तु पर को भी जाने - ऐसा व्यवहार कहने में आता है। जाने; पर का कुछ करे (नहीं)। आहाहा! यह हाथ भी हिला सके, वह आत्मा नहीं। आत्मतत्त्व दूसरे तत्त्व को स्पर्श भी नहीं करता तो उसका कर नहीं सकता। डॉक्टर! कभी सुनी न हो, ऐसी बात है। पूरे दिन यह किया... यह किया... यह किया... यह किया...

प्रभु! तू तत्त्व एक ही है या कुछ दूसरा है? इसका विचार तो कर कि तू एक ही तत्त्व है या दूसरे भी हैं? और दूसरे हैं तो कितने? तुझसे भिन्न अनन्त हैं। अनन्त जो हैं, वे एक-दूसरे, एक-दूसरे में प्रवेश करे और काम करे तो अनन्त रहते नहीं। प्रत्येक तत्त्व अपने में रहे और पर से न रहे। आहाहा!

इतना अन्तर यहाँ बताते हैं कि यह ज्ञान और दर्शन अपने को देखे और पर इनमें नहीं, उसे देखे - ऐसा व्यवहार कहने में आता है। ऐसा व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! पर को जाने, वह व्यवहार! गजब बात है। यह तो पूरे दिन पर का करना... करना... करना... करना... आहाहा!

लेख में आता है। क्रमबद्ध को अब बहुत से स्वीकार करते हैं। कितने ही बहुत विरोध भी करते हैं। क्रमबद्ध प्रत्येक द्रव्य में, प्रत्येक समय की जो अवस्था जो हालत, धारा प्रमाण प्रवाह चलती है, आगे-पीछे नहीं। आहाहा! प्रत्येक पदार्थ में अपनी पर्याय जो अवस्था बदलती है, वह अपने समय में होती है। पर से नहीं। अपने में आगे-पीछे नहीं। अरर! ऐसी बातें! परम सत्य बहुत अलौकिक बात है। अभी तो गड़बड़-गड़बड़ कर डाली। आहाहा! परन्तु इतना विरोध कि स्वयं को जाने; ऐसे व्यवहारनय से पर को जाने।

'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित है)' ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से व्यवहारनय के बल से ऐसा है (अर्थात् परप्रकाशक है);... ऐसा कहा जाता है। अपना ज्ञान अपने को जाने और अपने को पर से स्पर्शे बिना, पर का अस्तित्व अपने में आये बिना, पर का अस्तित्व उसमें रहकर, अपना अस्तित्व अपने में रहकर, अपना ज्ञान अपने को जाने, यह तो निश्चय, परन्तु वह ज्ञान पर को जानता है - ऐसा कहने में व्यवहार है। आहाहा! यहाँ तक जाना। निवृत्ति कहाँ है? फुर्सत नहीं होती। पूरे दिन धमाल।

इसलिए दर्शन भी वैसा ही (-व्यवहारनय के बल से परप्रकाशक) है। पहले ज्ञान का कहा कि अपना ज्ञान जो जाननस्वभाव, वह अपने को जाने, यह तो निश्चय परन्तु वह ज्ञान पर को जाने, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। इसी तरह दर्शन अपने को देखे, वह निश्चय और ज्ञान जैसे पर को जाने, वैसे दर्शन पर को देखे, उसे भी व्यवहार कहने में आता है। पर का करे, कुछ कर सके, यह बात नहीं है। आहाहा! गजब बात! नजर में पड़ता है कि यह सब स्पर्श करता है और ऐसा होता है, ऐसा होता है। नजर में ऐसा नहीं

पड़ता। तेरी दृष्टि संयोग पर है; स्वभाव पर दृष्टि हो या तत्त्व पर दृष्टि हो तो तत्त्व, तत्त्व में है। वह तत्त्व दूसरे तत्त्व से नहीं है। अतः संयोग से न देखे तो वह तत्त्व अपना ही कर सकता है, पर का कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! है तो लॉजिक, परन्तु बहुत कठिन। दुनिया में पूरी प्रवृत्ति दूसरी। जैसे वह ज्ञान अपने को जाने, निश्चय; पर को जाने, वह व्यवहार। इसी तरह दर्शन भी स्व को जाने, वह निश्चय, दर्शन पर को देखे, वह भी व्यवहार। है? **इसलिए दर्शन भी वैसा ही है।**

मुमुक्षु : स्व-पर को एकसाथ जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकसाथ। जाने और देखे एकसाथ ही है। यहाँ तो केवलज्ञान की बात है न? अल्पज्ञ प्राणी है, उसे पहले दर्शन और पश्चात् ज्ञान (होता है), क्योंकि उसे अल्प ज्ञान है, उसमें पूर्णता का अभाव है। इसलिए अल्पज्ञानी का ज्ञान एक समय में जानता है, उस समय में ही देखता नहीं। आहाहा! जब पूर्ण हो गये, ज्ञान और दर्शन पूर्ण हो गये, तब अपने को भी जाने, ऐसे पर को भी जाने - ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! पर का कर सके, यह प्रश्न नहीं है। एक अंगुली भी हिला सके, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसका अस्तित्व में उसमें है और ज्ञान का अस्तित्व आत्मा में है। अब एक अस्तित्व दूसरे अस्तित्व को स्पर्श नहीं करता। स्पर्श करे तो एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव / नास्ति है, वह नास्ति नहीं रह सकती। सब एक हो जाता है। और सब एक हो जाए तो दृष्टि मिथ्या हो जाती है। आहाहा!

(-व्यवहारनय के बल से परप्रकाशक) है। और तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकर-परमदेव को—कि जो सौ इन्द्रों की प्रत्यक्ष वन्दना के योग्य हैं... आहाहा! सौ इन्द्र हैं। इन्द्रों को वन्दन के योग्य भगवान हैं। आहाहा! **और कार्यपरमात्मा हैं...** त्रिकाल वस्तु है, त्रिकाल। त्रिकाल नित्य है, उसे-आत्मा को कारणपरमात्मा कहा जाता है और उसमें से विकास होकर पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन और पूर्ण आनन्द प्रगट हो, उसे कार्यपरमात्मा कहते हैं। अरेरे! ऐसी भाषा! अन्य तो यह करो और यह करो, पर की सेवा करो तो कल्याण हो जाएगा। धूल में भी नहीं। सेवा कौन करता था?

मुमुक्षु : अकल्याण नहीं होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर की सेवा की, यह पूर्ण अकल्याण है। पर की सेवा कर

सकता हूँ, यह अ-श्रेय पूर्ण है। आहाहा! ऐसी बात जगत में... तत्त्व की विचारधारा ही लोगों की घट गयी। बाहर की प्रवृत्ति के कारण निवृत्ति रही नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान **कार्यपरमात्मा हैं उन्हें—ज्ञान की भाँति ही (व्यवहारनय के बल से) परप्रकाशकपना है;...** भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ, जिन्हें सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है, वे व्यवहारनय से... पर-अपेक्षा, यह व्यवहार; स्व अपेक्षा, यह निश्चय। पर अपेक्षा से सर्वज्ञ परमात्मा को भी, पर को जानते हैं - ऐसा कहना, वह व्यवहार है। है ? **इसलिए व्यवहारनय के बल से उन भगवान का केवलदर्शन भी (वैसा ही है।)** भगवान का ज्ञान जैसे पर को जानता है, वैसे उनका दर्शन भी पर को जानता है, देखता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात पकड़ना मुश्किल पड़े। कभी किया नहीं।

जो है, वह स्व से है; पर से है नहीं। वरना तो स्व से है - ऐसा रह नहीं सकता। यह अँगुली, अँगुलीरूप से है; दूसरी अँगुलीरूप से नहीं। दूसरी अँगुलीरूप से नास्ति है। इस अँगुलीरूप से अस्ति है, दूसरी अँगुलीरूप से नास्ति है। नास्ति है तो वहाँ नहीं, यह भी अस्ति है। उसका नास्तिपना भी अन्दर में अस्ति है। नास्तिपना नहीं। आहाहा! ऐसा कहाँ करने जाए ? धन्धा पूरे दिन करे।

अनन्त काल गया, प्रभु! चौरासी के अवतार करते-करते। चौरासी लाख योनियाँ; एक-एक योनि में अनन्त बार जन्म किये। शूकर के अवतार, नरक के अवतार, स्वर्ग के अवतार, मनुष्य के अवतार, दुःख की दशा में मिथ्याभ्रान्ति के कारण एक-एक में अनन्त बार अवतार कर चुका। आहाहा! जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा नहीं जानकर, विपरीत मानकर चौरासी (लाख योनियों) में परिभ्रमण किया। यहाँ बड़ा करोड़पति सेठ हो, माँस खाता हो तो जाए नरक में और न खाता हो तो शूकर या कौए में जाए। आहाहा! क्योंकि आत्मा तो नित्य है, शरीर का नाश होता है। वह भी नाश होता है, इसकी व्याख्या अलग है। शरीर की जो अवस्था शरीररूप है, वह परमाणु की दूसरी अवस्था होती है, इसका नाम शरीर का नाश है। कहीं परमाणु का नाश कभी नहीं होता। अस्ति है, परमाणु रजकण है। है, उसका कभी नाश नहीं होता। नहीं है, वह कभी उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! ऐसा धर्म! वे तो कहे, दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, प्रभु की माला गिनो (जपो)। सीधा सट्ट था।

यहाँ आज बहुत विरोध आया है। ये लोग - सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं, भगवान

की माला जपना, वह राग है, धर्म नहीं। लाख बार, करोड़ बार, अनन्त बार कहते हैं कि पर का – भगवान का स्मरण करना, वह राग है, पुण्य है; धर्म नहीं। मीठी हल्की भाषा से कहें तो भगवान का स्मरण – याद करे, वह राग है, वह भी अधर्म है। आहाहा!

अपनी निज चीज़ अस्तिरूप है और वह परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर है। उसका भान और ज्ञान हुआ तो जैसे ज्ञान अपने को जाने, वैसे व्यवहार से पर को जाने। वैसे दर्शन अपने को जाने-देखे, वैसे व्यवहार से पर को देखे—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! है ? **इसलिए व्यवहारनय के बल से उन भगवान का केवलदर्शन भी वैसा ही है।** भगवान का केवलदर्शन भी पर को देखता है – ऐसा व्यवहार से कहा जाताहै। आहाहा! कहा जाता है, हों! जानने में निमित्त। यह जाननेवाली जो चीज़ है, जाननेवाली चीज़ है, वह जिसे जाने, उसमें प्रवेश नहीं करती। जिसे जाने, उसमें प्रवेश नहीं करती। जिसे जाने, उसे स्पर्श नहीं करती। आहाहा! शरीर को आत्मा कभी स्पर्श नहीं करता। आत्मा शरीर को स्पर्श नहीं करता; शरीर आत्मा को स्पर्श नहीं करता।

मुमुक्षु : अभी थोड़े समय से बलवानरूप से यह बात चलती है, एक दूसरे को छूते नहीं इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक की पूरी... लोक रखे शून्य। लोक तो सब शून्य रखे, ऐसी बात करते हैं। यह तो सर्वज्ञ भगवान से प्रत्यक्ष हुई, ज्ञान में प्रत्यक्ष हुआ वस्तु का अस्तित्व अर्थात् होनापना जैसा है, वैसा होनापने का कथन है। आहाहा!

कहते हैं कि मात्र यह ज्ञान-दर्शन तुझे होवे तो व्यवहार यदि करना हो तो पर को जाने-देखे, इतना व्यवहार है; परन्तु पर को अपना मानना, ऐसा कोई व्यवहार है ही नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

इसी प्रकार श्रुतबिन्दु में (श्लोक द्वारा) कहा है कि :—

जयति विजितदोषोऽमर्त्यमर्त्येन्द्रमौलि-
प्रविलसदुरुमालाभ्यर्चिताङ्घ्रिर्जिनेन्द्रः।
त्रिजग-दजगती यस्येदृशौ व्यश्नुवाते,
सममिव विषयेष्वन्योन्य-वृत्तिं निषेद्धुम्।।

श्लोकार्थ :- आहाहा! **जिन्होंने दोषों को जीता है,...** यहाँ दो बात हुई कि आत्मा

है और दोष भी है। दोष नहीं होवे तो इस संसार में परिभ्रमण न हो। आहाहा! आत्मा है और दोष भी है। दोष न हो तो परिभ्रमण नहीं हो सकता। इसलिए **जिन्होंने दोषों को जीता है,...** जिन्होंने दोष को जीत लिया। आहाहा! वस्तु को छोड़ दी और वस्तु को स्पर्श नहीं किया, ऐसी यहाँ बात नहीं है। वह वस्तु तो अनन्त बार तुझसे छूटी ही पड़ी है। कभी तेरे पास आयी नहीं और कभी तू उसके पास गया नहीं। आहाहा! परन्तु दोषों को जीता है। अपने में जो दोष हैं, राग और द्वेष और विषय-कषाय, मैं पर का कर सकता हूँ, पर का भला कर सकता हूँ... आहाहा! यह वकील कहे, मैं पर को जिता सकता हूँ। डॉक्टर कहे मैं पर को दवा देकर रोग मिटा सकता हूँ। आहाहा! कठिन बात है। यह सेठ कहे, मैं पैसा दे सकता हूँ, पैसा दे सकता हूँ, कपड़े के व्यापार के लिये कपड़ा दे सकता हूँ। प्रभु! तेरे सिवाय पर का तू कुछ नहीं कर सकता। यदि बहुत लेना होवे तो मात्र तुझमें ज्ञान और दर्शन का विकास होवे तो व्यवहार से पर को जाने-देखे, इतना हो, बस! आहाहा! परन्तु व्यवहार से पर का करना, पर को सुधारना, बालक को सुधारना, बालक को पढ़ाना, शिक्षा देना...

मुमुक्षु : लड़के को अपने अनुभव का लाभ देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन धूल दे सकता है? जो अपनी पर्याय है, वह अपने में रही; बालक की पर्याय उसके पास रही। उस पर्याय में इस पर्याय का प्रवेश नहीं। यह अवस्था उस अवस्था को स्पर्श नहीं करती। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा न होवे तो लड़के स्वच्छन्दी हो जाएँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के स्वच्छन्दी हों या न हों, वह तो उनकी पर्याय स्वतन्त्र है। इसकी पर्याय स्वतन्त्र है। कठिन बात है, भाई! आहाहा! यह नजदीक में शरीर रहा है, इसकी पलक भी नहीं फिरा सकता। आहाहा! क्योंकि अस्ति तत्त्व है और अस्ति तत्त्व है तो अपनी शक्ति अपनी में रखता है। अपने में है तो अपनी शक्ति से पलक फिरती है। आत्मा के कारण वह पलक फिरती है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी नहीं फिरती पलक।

पूज्य गुरुदेवश्री : पलक धूल की है। यह धूल है, धूल। यह रहना, न रहना, उसके आधार से है; आत्मा के आधार से कुछ है नहीं। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

पानी पी सकता नहीं, भोजन खा सकता नहीं। आहाहा! क्योंकि वह दूसरी चीज़ है। दूसरा आत्मा दूसरी चीज़ को स्पर्श भी नहीं करता तो खा-पी कहाँ से सकता है? अरे! भगवान! यह बात। आहाहा! दुनिया पागल, उसे ऐसी बात पागल जैसी लगे। पागल जैसी लगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान परमात्मा को पूर्ण ज्ञान-दर्शन प्रगट हुए हैं और इसलिए स्वयं को पूर्ण जानते हैं, वैसे व्यवहार से कहें तो पर को भले जाने। निश्चय से अपने को जानते हैं। दर्शन जहाँ पूर्ण हुआ तो निश्चय से अपने को देखते हैं। इतनी पूर्ण दशा हुई तो कुछ भी पर को करे, ऐसा कुछ है या नहीं? - कि पर का तो कुछ कर नहीं सकते, परन्तु वह तो पर को देखे, ऐसा व्यवहार किया जाता है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? ऐसी बात है। अब हीरा-माणेक देते-देते हों और यह बात करे तो पागल कहे। ऐसे देते हों, प्रतिदिन की दो-दो, पाँच-पाँच हजार की आमदनी हो। आहाहा! पैसा। यहाँ कहते हैं कि तू पैसे को स्पर्श नहीं करता। तू उसे दे नहीं सकता। उसके पास से ले नहीं सकता। यह काम करनेवाला पर का काम कर सकता नहीं। हीरा को घिसता है? तो कहते हैं, नहीं; नहीं। हीरा को घिसने का चलता है न अभी? हीरा भिन्न है, तू भिन्न है। तेरा आत्मा हीरा को घिसे ऐसा तीन काल में है नहीं। बहुत तो इतना है कि उसे जाने, इतना व्यवहार है। आहाहा! होता है, उसे जाने; होता है, उसे देखे, इतना व्यवहार भले हो। परन्तु होता है, उसे बनावे (-ऐसा तो नहीं है)। आहाहा! पूरे दिन करना और यह कहते हैं कि कुछ कर नहीं सकता। यह भाषा चलती है, वह आत्मा से नहीं। प्रभु आत्मा अरूपी, वह ज्ञान-दर्शन-आनन्द से पूर्ण भरपूर। वह ज्ञान-दर्शन से जाने-देखे—ऐसा कहना, इतना भी व्यवहार है। आहाहा! पर को करे तो नहीं। कहो, शिवलालभाई! इन शिवलालभाई को डिब्बों का बड़ा व्यापार है। बाजरा, गेहूँ और चावल... यह तो दुनिया से ऊँची बात है। आहाहा!

यहाँ दो बात कहते हैं कि तू आत्मा है? है। तुझमें कोई शक्ति है या शक्तिरहित आत्मा है? शक्ति है। कौन सी शक्ति है? ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि शक्ति है। तो उस शक्ति का वर्तमान में पूर्ण विकास नहीं है। तो कदाचित् पर का नहीं कर सकता परन्तु भगवान को पूर्ण विकास हुआ... आहाहा! यहाँ ऐसा कहा न? वीतराग परमात्मा सर्वज्ञदेव राग का नाश करके पूर्ण ज्ञान-दर्शन प्रगट हुए तो वे पर में कुछ कर सकते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : राग होवे, वह करे न? जिसे राग न हो, वह न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री: राग होवे तो भी करता नहीं और राग न होवे तो भी करता नहीं। राग होवे तो राग का कर्ता हो, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा! प्रभु तो ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, सच्चिदानन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द, सत्-सत् है। चिदानन्द ज्ञान और आनन्द है। वह ज्ञान और आनन्द है। वह किसी का करता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम।

यहाँ यह कहते हैं कि भले पूर्ण विकास हुआ। अल्पज्ञानी तो कदाचित् करे, ऐसा कहो, मानो तो भी भ्रम है। परन्तु पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन हुआ तो तीन काल-तीन लोक को जाने-देखे। परन्तु उस पर को जाने-देखे, इतना भी व्यवहार है। निश्चय से पर को जानता-देखता नहीं। क्यों? - कि जिसमें तन्मय होता है, उसे निश्चय कहते हैं। जिसमें तन्मय हुए बिना दूर रहकर जाने, उसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात किस प्रकार की!

मुमुक्षु : पर में तन्मय होकर जाने तो बाधा क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाश हो जाए। अपना नाश होकर पर में जाए, यह किस प्रकार हो? तन्मय-तन्मय अर्थात् उसरूप। अपने स्वरूप को (छोड़कर) यह स्वरूप पररूप चला जाए तो अपना नाश हो जाता है। लॉजिक से, न्याय से (बात है)। आहाहा! यह बात सुनने को मिलना मुश्किल है। अभी तो सब गड़बड़, कार्यवाहक और सब डॉक्टर सब वकील और सब इकट्ठे होकर ऐसा करते हैं हम, हम ऐसा करते हैं, देश का ऐसा करते हैं। आहाहा! कारीगर और मकान बनानेवाला, कुम्हार घड़ा बनानेवाला। कुम्हार घड़ा बना नहीं सकता। घड़ा मिट्टी से बनता है। मिट्टी में पर्याय पलटने का स्वभाव है, तो मिट्टी से घड़ा बनता है। आटा से रोटी बनती है। स्त्री से और तवा से रोटी नहीं होती। आहाहा!

यहाँ न्याय क्या कहते हैं? कि भाई! अल्पा है, तब तक तुमको भ्रम लगता है कि पर को कुछ न कुछ सहायता करते हैं। अब यहाँ तो पूर्ण दशा प्रगट हुई, वह भी पर का कुछ करे नहीं, परन्तु पर को जाने, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! व्यवहार से अर्थात् पराश्रित व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा!

जिन्होंने दोषों को जीता है,... दो बात हुई। आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न है और उसकी दशा में दोष भी है। चार गति में भटकता है। अब यह दोष है, उसे जीत भी सकता है। क्योंकि अपनी पर्याय में अवस्था में दोष है। वस्तु में नहीं। वस्तु निर्दोष आनन्दकन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द प्रभु की दृष्टि करने और उसमें लीन होने पर दोष नाश होते हैं। दोष है। दोष न हो तो परिभ्रमण नहीं कर सकता। परन्तु उन दोषों को जीता है। **जिनके चरण देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों के मुकुटों में प्रकाशमान मूल्यवान मालाओं से पुजते हैं...** आहाहा! आहाहा! यहाँ क्या कहते हैं कि बड़े इन्द्र आकर जिन्हें पूजें तो भी वे पर का कुछ नहीं करते। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे का कुछ नहीं करते तो भी (दूसरे) चरण वन्दन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ न। वे कौन इन्द्र? कैसे? आहाहा!

जिनके चरण... केवली सर्वज्ञ भगवान परमात्मा आत्मा होता है, तब **देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों के मुकुटों में प्रकाशमान मूल्यवान मालाओं से...** मूल्यवान माला। अरबों की कीमती माला हो मुकुट में। ऐसे नम जाते हैं। भगवान के चरणकमल में नम जाते हैं। आहाहा! **(अर्थात् जिनके चरणों में इन्द्र तथा चक्रवर्तियों के मणिमालायुक्त मुकुटवाले मस्तक अत्यन्त झुकते हैं), और (लोकालोक के समस्त) पदार्थ एक-दूसरे में प्रवेश को प्राप्त न हों इस प्रकार...** आहाहा! **तीन लोक और अलोक जिनमें एक साथ ही व्याप्त हैं...** ऐसे इन्द्र जिन्हें नमन करें, वन्दन की क्रिया करे, तो भी भगवान तो तीन लोक-तीन काल को जाननेवाले हैं। वे (वन्दनादि) करते हैं, वह भी ज्ञान होने से पहले, केवलज्ञान हुआ, उस ज्ञान में ज्ञात हुआ था कि इस प्रकार करेंगे। परन्तु वे महा इन्द्र और नरेन्द्र जिनेन्द्र को नमस्कार और वन्दन करें तो भी वे पर का कुछ करते नहीं। आहाहा! दूसरे जब अपने को वन्दन करे, तब इन्हें कुछ तो करना चाहिए न? आहाहा! दुनिया से सब अलग, बापू! दुनिया तो अज्ञ-पागल हो गयी है। कुछ नहीं, डॉक्टर। यहाँ तो दुनिया को पागल कहते हैं। पढ़े हुए को।

अपना चैतन्यमूर्ति भगवान भिन्न है। उसके अस्तित्व की खबर नहीं और उसके अस्तित्व का विकास जब होता है, तब इन्द्रादि उनकी पूजा करते हैं। ऐसी वन्दनादि की क्रिया इन्द्र-नरेन्द्र करें तो भी भगवान पर का कुछ नहीं कर सकते। आहाहा!

मुमुक्षु : वन्दन तो धर्म नहीं, अधर्म है। भगवान उसे इनकार नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव है। भाव होता है।

यहाँ तो कहना है यह कि इस प्रकार से जिन्हें नरेन्द्र और इन्द्र भी नमन करे, जिन्हें मुकुट की माला छुए, ऐसी वन्दन की क्रिया (करे), तो भी वे भगवान उनका कुछ नहीं करते। आहाहा! ये इन्द्रादि उन्हें नमन करते हैं। वे भगवान पर का कुछ नहीं करते। उन्हें आशीर्वाद नहीं देते कि जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। यह नहीं। अरेरे! क्या बात यह! पागल जैसी बात लगे। बात ऐसी कठिन, बापू! वस्तु का स्वरूप कोई अलग प्रकार है। आहाहा! यहाँ यह कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु : भगवान को तो तिन्नाणं तारयाणं कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहार। व्यवहार से (कहा)। यह कहा, ऐसा व्यवहार, ऐसा यह व्यवहार। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि परमात्मा जब दोष का नाश करके निर्दोष होते हैं। पर्याय में दोष है और मिथ्यात्व-राग-द्वेष है। (मिथ्यात्व), राग-द्वेष टलकर अन्दर समकित हुआ और वीतरागता हुई है तो तीन काल-तीन लोक का जानना-देखना हुआ। नरेन्द्र और इन्द्र आकर मुकुट से नमन करे तो भी कुछ आशीर्वाद देकर कोई कल्याण कर सके, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : आज तो दिव्यध्वनि का दिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिव्यध्वनि निकलती है। आज भगवान के श्रीमुख से दिव्यध्वनि (निकली)। वीर परमात्मा केवल (ज्ञान) को प्राप्त हुए थे बैशाख शुक्ल दसमी (को), बैशाख शुक्ल दसमी। परन्तु छियासठ दिन तक वाणी नहीं खिरी। वह वाणी आज खिरी थी। आहाहा! उसे यहाँ ढाई हजार वर्ष हुए। उस वाणी में यह आया था। गणधरों ने, सन्तों ने यह वाणी झेली और अपनी ताकत से केवलज्ञान प्रगट किया। आहाहा! तो भी भगवान को मैं नमस्कार करूँ, एक सर्वज्ञ हुए और दूसरे सर्वज्ञ हुए तो दूसरे सर्वज्ञ दूसरे सर्वज्ञ को नमन करे (ऐसा नहीं)। पहले के सर्वज्ञ हैं, इसलिए मैं नमन करूँ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, पूर्ण ज्ञान और दर्शन जहाँ प्रगट हुए, वे पर का कुछ नहीं

करते। पर को वन्दन नहीं करते। आहाहा! और वन्दन करे, उसे आशीर्वाद नहीं देते कि तेरा कल्याण होगा। आहाहा! अरे प्रभु! वीतराग! बापू! प्रभु! तेरा स्वरूप। सर्वज्ञ-वीतराग तेरा स्वरूप है। आहाहा!

अनन्त-अनन्त काल हुआ। यह भव, पहले भव, भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... अनन्त काल में भवरहित रहा नहीं। अनन्त भव किये। परन्तु कभी इसने आत्मज्ञान नहीं किया। आहाहा! पशु के अनन्त अवतार, मनुष्य के अनन्त अवतार, चींटी-कौए के अनन्त अवतार, शूकर के अनन्त अवतार, विष्ठा खाये, उसके अवतार... आहाहा! अनादि काल का है (तो) रहा कहाँ? आत्मा तो नित्य है। रहा कहाँ? इस भटकते परिभ्रमण में रहा। आहाहा! यह परिभ्रमण मिटाना हो तो तुझमें जो अज्ञान है कि मैं पर का करता हूँ और पर को मदद करूँ, सेवा करूँ—यह सब दोष है, उस दोष का नाश कर डाल और ज्ञाता-दृष्टा हो जा। ज्ञाता-दृष्टा होने पर इन्द्र आदि नमन करे तो भी तेरे ज्ञान-दर्शन में ऐसा विकल्प नहीं होगा कि तेरा कल्याण हो। ऐसी आपकी दशा है, प्रभु! आहाहा! समझना कठिन पड़े ऐसा है, प्रभु! जो यहाँ अधिकार चले, वह बात चले न! जिसे जगत ने सुना न हो... आहाहा!

चैतन्यप्रकाश के पूर अन्दर भरे हैं। चैतन्यप्रकाश के नूर का पूर आत्मा! आहाहा! वे भगवान पूर्णानन्द को प्राप्त हों तो भी पर को कुछ आशीर्वाद देकर कल्याण करे, ऐसा नहीं है। यह तिन्नाणं तारयाणं आया न, वह तो स्वयं बोलते हैं। उन्हें क्या है? वे कहाँ किसी को तारते थे? आहाहा! जिस द्रव्य की-पदार्थ की जिस समय में जो उसकी पर्याय होनेवाली है, वह क्रमबद्ध होगी। उसे दूसरा करे अथवा वह पर्याय आगे-पीछे स्वयं करे, ऐसा नहीं होता। आहाहा! भारी कठिन बात। स्वयं आप फेरफार करे, ऐसा नहीं... आहाहा!

मुमुक्षु : हाथ पकड़कर बैठे रहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठा रहा है। मानता है कि मैं यह करता हूँ। वह तो स्वयं ज्ञान और दर्शन, आनन्दस्वरूप में ही है। जहाँ-तहाँ मान्यता करता है कि यह किया.. यह किया.. यह किया... अभिमान। 'मैं करूँ... मैं करूँ - यही अज्ञान है'। नरसिंह मेहता कहते हैं। नरसिंह मेहता जूनागढ़ में हो गये न? वैष्णव में। 'मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञान

है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे'। गाड़ी को जैसे कुत्ता खींचे। गाड़ी तो उसे छूती हो। गाड़ी तो बैल से चलती हो। उस कुत्ते को ऐसा कि मुझसे चलती है। इसी प्रकार इस दुकान पर बैठे तो कहता है, मुझसे यह सब चलता है। वह सब कुत्ता जैसे हैं। ऐसा है, बापू! यह तो इसके हित की बात है। आहाहा!

हमारे यहाँ हमारी दुकान में था न? पालेज में दुकान है न? कुँवरजीभाई बैठे तो यह सब मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ... हमारे बड़े भाई भागीदार थे। दो दुकानें थीं। उनका बड़ा भाई मेरा भागीदार और उनका छोटा भाई हमारे बड़े भाई का भागीदार। दो दुकानें थी। कि मैं करूँ... मैं करूँ... यह पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। यह (अभी) तो ९१ वर्ष हुए। डॉक्टर! शरीर को ९१-९१ वर्ष (हुए)। ९० और १। पिचहत्तर वर्ष पहले दुकान पर सब देखा है। आहाहा! अभिमान... अभिमान, मानों यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... कहा - यह क्या करता है? उस दिन मैंने कहा था। (संवत्) १९६४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ६४? १८ वर्ष की उम्र थी। उस दिन मैंने कहा था। मैं तो पहले से भगत कहलाता था। उस दिन कहा, क्या पूरे दिन यह होली सुलगती है! मरकर ढोर में जाएगा, याद रखना। यह तेरे रुपये दो-दो लाख और पाँच-पाँच लाख की आमदनी यहीं पड़ी रहेगी। बोले नहीं, मेरे सामने बोले नहीं। यह भगत है। भगत है, भगत है, बोलने दो। मुझसे चार वर्ष बड़े थे। मेरे सामने कभी कोई बोले नहीं। उस समय १८ वर्ष पहले (१८ वर्ष की उम्र में) ऐसी छाप थी। दुकान तो मैं भी चलाता था। पाँच वर्ष (चलायी)। आहाहा! बापू! यह चीज़ कोई अलग है।

यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि आत्मज्ञानी-आत्मदर्शी कदाचित् किसी का करे, ऐसा तुम मानो, तो मैं तो कहता हूँ, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी को पूर्ण इन्द्र नमन करते हैं, तो भी वे भगवान पर को कभी नहीं कहते। वे जानते हैं, ऐसा कहे तो वह भी व्यवहार है। वे भगवान उसे जानते हैं, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। बाकी निश्चय से तो अपने को जानते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)